श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कुंती स्तुति (अर्थ)

सूत उवाच

अथ ते सम्परेतानां(म्), स्वानामुदकमिच्छताम् ।

दातुं(म्) सकृष्णा गङ्गायां(म्), पुरस्कृत्य ययुः(स्) स्त्रियः ॥ 1॥

सूतजी कहते हैं—इसके बाद पाण्डव श्रीकृष्णके साथ जलांजलिके इच्छुक मरे हुए स्वजनोंका तर्पण करनेके लिये स्त्रियोंको आगे करके गंगातटपर गये ॥ 1 ॥

ते निनीयोदकं(म्) सर्वे, विलप्य च भृशं(म्) पुनः ।

आप्लुता हरिपादाब्ज- रजः(फ्)पूतसरिज्जले ॥ 2॥

वहाँ उन सबने मृत बन्धुओंको जलदान दिया और उनके गुणोंका स्मरण करके बहुत विलाप किया। तदनन्तर भगवान् के चरण- कमलोंकी धूलिसे पवित्र गंगाजलमें पुन: स्नान किया ॥ 2 ॥

तत्रासीनं(ङ्) कुरुपतिं(न्), धृतराष्ट्रं(म्) सहानुजम् ।

गान्धारीं(म्) पुत्रशोकार्तां(म्), पृथां(ङ्) कृष्णां(ञ्)च माधवः ॥ 3॥

सान्त्वयामास मुनिभिर्-हतबन्धूञ्छुचार्पितान् ।

भूतेषु कालस्य गतिं(न्), दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ 4॥

वहाँ अपने भाइयोंके साथ कुरुपति महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, पुत्रशोकसे व्याकुल गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदी—सब बैठकर मरे हुए स्वजनोंके लिये शोक करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने धौम्यादि मुनियोंके साथ उनको सान्त्वना दी और समझाया कि संसारके सभी प्राणी कालके अधीन हैं, मौतसे किसीको कोई बचा नहीं सकता ॥ 3-4 ॥

साधयित्वाजातशत्रोः(स्),स्वं(म्) राज्यं(ङ्)कितवैर्हृतम् ।

घातयित्वासतो राज्ञः(ख्), कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ 5॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरको उनका वह राज्य, जो धूर्तोंने छलसे छीन लिया था,वापस दिलाया तथा द्रौपदीके केशोंका स्पर्श करनेसे जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी, उन दुष्ट राजाओंका वध कराया ॥ 5 ॥

याजयित्वाश्वमेधैस्तं(न्), त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ।

तद्यशः(फ्) पावनं(न्) दिक्षु, शतमन्योरिवातनोत् ॥ 6॥

साथ ही युधिष्ठिरके द्वारा उत्तम सामग्रियोंसे तथा पुरोहितोंसे तीन अश्वमेध यज्ञ कराये। इस प्रकार युधिष्ठिरके पवित्र यशको सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रके यशकी तरह सब ओर फैला दिया ॥ 6 ॥

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रां(व्)श्च, शैनेयोद्धवसं(य्)युतः ।
द्वैपायनादिभिर्विप्रैः,पूजितैः(फ्) प्रतिपूजितः ॥ 7॥
गन्तुं(ङ्) कृतमतिर्ब्रह्मन् , द्वारकां(म्) रथमास्थितः ।
उपलेभेऽभिधावन्ती- मुत्तरां(म्) भयविह्वलाम् ॥ 8॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने वहाँसे जानेका विचार किया । उन्होंने इसके लिये पाण्डवोंसे विदा ली और व्यास आदि ब्राह्मणोंका सत्कार किया। उन लोगोंने भी भगवान्का बड़ा ही सम्मान किया। तदनन्तर सात्यकि और उद्धवके साथ द्वारका जानेके लिये वे रथपर सवार हुए। उसी समय उन्होंने देखा कि उत्तरा भयसे विह्वल होकर सामनेसे दौड़ी चली आ रही है ॥ 7-8 ॥

उत्तरोवाच
पाहि पाहि महायोगिन्- देवदेव जगत्पते ।
नान्यं(न्) त्वदभयं(म्) पश्ये ,यत्र मृत्युः(फ्) परस्परम् ॥ 9॥

उत्तराने कहा—देवाधिदेव ! जगदीश्वर ! आप महायोगी हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतिरिक्त इस लोकमें मुझे अभय देनेवाला और कोई नहीं है; क्योंकि यहाँ सभी परस्पर एक-दूसरेकी मृत्युके निमित्त बन रहे हैं ॥ 9 ॥

अभिद्रवति मामीश, शरस्तप्तायसो विभो ।
कामं(न्) दहतु मां(न्) नाथ, मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ 10॥

प्रभो ! आप सर्व-शक्तिमान् हैं। यह दहकते हुए लोहेका बाण मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। स्वामिन् ! यह मुझे भले ही जला डाले, परन्तु मेरे गर्भको नष्ट न करे—ऐसी कृपा कीजिये ॥ 10 ॥

सूत उवाच
उपधार्य वचस्तस्या, भगवान् भक्तवत्सलः ।
अपाण्डवमिदं(ङ्) कर्तुं(न्), द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ 11॥

कर्मयोगी लोग यज्ञ, तप, दान, व्रत तथा यम-नियम आदि को पुरुषार्थ बतलाते हैं। परन्तु ये सभी कर्म हैं; इनके फलस्वरूप जो लोक मिलते हैं, वे उत्पत्ति और नाश वाले हैं। कर्मों का फल समाप्त हो जाने पर उनसे दुःख ही मिलता है और सच पूछो, तो उनकी अन्तिम गति घोर अज्ञान ही है। उनसे जो सुख मिलता है, वह तुच्छ हैं-नगण्य है और वे सूतजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसकी बात सुनते ही जान गये कि अश्वत्थामाने पाण्डवोंके वंशको निर्बीज करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया है ॥ 11 ॥

तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ, पाण्डवाः(फ्) पञ्च सायकान् ।
आत्मनोऽभिमुखान्दीप्ता- नालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ 12॥

शौनकजी ! उसी समय पाण्डवोंने भी देखा कि जलते हुए पाँच बाण हमारी ओर आ रहे हैं। इसलिये उन्होंने भी अपने-अपने अस्त्र उठा लिये ॥ 12 ॥

व्यसनं(म्) वीक्ष्य तत्तेषा- मनन्यविषयात्मनाम् ।

सुदर्शनेन स्वास्त्रेण, स्वानां(म्) रक्षां(म्) व्यधाद्विभुः ॥ 13॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने अपने अनन्य प्रेमियोंपर—शरणागत भक्तोंपर बहुत बड़ी विपत्ति आयी जानकर अपने निज अस्त्र सुदर्शन-चक्रसे उन निज जनोंकी रक्षा की ॥ 13 ॥

अन्तः(स्)स्थः(स्) सर्वभूताना- मात्मा योगेश्वरो हरिः ।

स्वमायायाऽऽवृणोद्गर्भं(म्), वैराट्याः(ख्) कुरुतन्तवे ॥ 14॥

योगेश्वर श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान आत्मा हैं। उन्होंने उत्तराके गर्भको पाण्डवोंकी वंश-परम्परा चलानेके लिये अपनी मायाके कवचसे ढक दिया ॥ 14 ॥

यद्यप्यस्त्रं(म्) ब्रह्मशिरस्- त्वमोघं(ञ्) चाप्रतिक्रियम् ।

वैष्णवं(न्) तेज आसाद्य, समशाम्यद् भृगूद्वह ॥ 15॥

शौनकजी ! यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है और उसके निवारणका कोई उपाय भी नहीं है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णके तेजके सामने आकर वह शान्त हो गया ॥ 15 ॥

मा मं(व्)स्था ह्येतदाश्चर्यं(म्),सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ।

य इदं(म्) मायया देव्या, सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ 16॥

यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये; क्योंकि भगवान् तो सर्वाश्चर्यमय हैं, वे ही अपनी निज शक्ति मायासे स्वयं अजन्मा होकर भी इस संसारकी सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं ॥ 16 ॥

ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तै- रात्मजैः(स्) सह कृष्णया ।

प्रयाणाभिमुखं(ङ्) कृष्ण- मिदमाह पृथा सती ॥ 17॥

जब भगवान् श्रीकृष्ण जाने लगे, तब ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे मुक्त अपने पुत्रोंके और द्रौपदीके साथ सती कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की ॥ 17 ॥

कुन्त्युवाच

नमस्ये पुरुषं(न्) त्वाऽऽद्य- मीश्वरं(म्) प्रकृतेः(फ्) परम् ।

अलक्ष्यं(म्) सर्वभूताना- मन्तर्बहिरवस्थितम् ॥ 18॥

कुन्तीने कहा—आप समस्त जीवोंके बाहर और भीतर एकरस स्थित हैं, फिर भी इन्द्रियों और वृत्तियोंसे देखे नहीं जाते; क्योंकि आप प्रकृतिसे परे आदिपुरुष परमेश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ 18 ॥

मायाजवनिकाच्छन्न- मज्ञाधोक्षजमव्ययम् ।

न लक्ष्यसे मूढदृशा, नटो नाट्यधरो यथा ॥ 19॥

इन्द्रियोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसकी तहमें आप विद्यमान रहते हैं और अपनी ही मायाके परदेसे अपनेको ढके रहते हैं। मैं अबोध नारी आप अविनाशी पुरुषोत्तमको भला, कैसे जान सकती हूँ ? जैसे मूढ़ लोग दूसरा भेष धारण किये हुए नटको प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं पहचान सकते, वैसे ही आप दीखते हुए भी नहीं दीखते ॥ 19 ॥

तथा परमहं(व्)सानां(म्), मुनीनाममलात्मनाम् ।

भक्तियोगविधानार्थं(ङ्),कथं(म्) पश्येम हि स्त्रियः ॥ 20॥

आप शुद्ध हृदयवाले विचारशील जीवन्मुक्त परमहंसोंके हृदयमें अपनी प्रेममयी भक्तिका सृजन करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं ॥ 20 ॥

कृष्णाय वासुदेवाय, देवकीनन्दनाय च ।

नन्दगोपकुमाराय, गोविन्दाय नमो नमः ॥ 21॥

आप श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्द-गोपके लाड़ले लाल गोविन्दको हमारा बारंबार प्रणाम है ॥ 21 ॥

नमः(फ्) पङ्कजनाभाय, नमः(फ्) पङ्कजमालिने ।

नमः(फ्) पङ्कजनेत्राय, नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ 22॥

जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जो सुन्दर कमलोंकी माला धारण करते हैं, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं, जिनके चरण-कमलोंमें कमलका चिह्न है—श्रीकृष्ण! ऐसे आपको मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ 22 ॥

यथा हृषीकेश खलेन देवकी,

कं(व्)सेन रुद्धातिचिरं(म्) शुचार्पिता ।

विमोचिताहं(ञ्) च सहात्मजा विभो,

त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ 23॥

विषान्महाग्नेः(फ्) पुरुषाददर्शना-

दसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।

मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो,

द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥ 24॥

हृषीकेश ! जैसे आपने दुष्ट कंसके द्वारा कैद की हुई और चिरकालसे शोकग्रस्त देवकीकी रक्षा की थी, वैसे ही पुत्रोंके साथ मेरी भी आपने बार-बार विपत्तियोंसे रक्षा की है। आप ही हमारे स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। श्रीकृष्ण ! कहाँतक गिनाऊँ—विषसे, लाक्षागृहकी भयानक आगसे, हिडिम्ब आदि राक्षसोंकी दृष्टिसे, दुष्टोंकी द्यूत-सभासे, वनवासकी विपत्तियोंसे और अनेक बारके युद्धोंमें अनेक महारथियोंके शस्त्रास्त्रोंसे और अभी-अभी इस अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे भी आपने ही हमारी रक्षा की है ॥ 23-24 ॥

विपदः(स्) सन्तु नः(श्) शश्वत्- तत्र तत्र जगद्गुरो ।

भवतो दर्शनं(म्) यत्स्या- दपुनर्भवदर्शनम् ॥ 25॥

जगद्गुरो ! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता ॥ 25 ॥

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभि- रेधमानमदः(फ्) पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं(म्) वै, त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥ 26॥

ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिंचन हैं ॥ 26 ॥

नमोऽकिञ्चनवित्ताय, निवृत्तगुणवृत्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय, कैवल्यपतये नमः ॥ 27॥

आप निर्धनोंके परम धन हैं। मायाका प्रपंच आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता। आप अपने-आपमें ही विहार करनेवाले, परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्य मोक्षके अधिपति हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ 27 ॥

मन्ये त्वां(ङ्) कालमीशान- मनादिनिधनं(म्) विभुम् ।
समं(ञ्) चरन्तं(म्) सर्वत्र, भूतानां(म्) यन्मिथः(ख्) कलिः ॥ 28॥

मैं आपको अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियन्ता, कालरूप परमेश्वर समझती हूँ। संसारके समस्त पदार्थ और प्राणी आपसमें टकराकर विषमताके कारण परस्पर विरुद्ध हो रहे हैं, परन्तु आप सबमें समानरूपसे विचर रहे हैं ॥ 28 ॥

न वेद कश्चिद्भगवं(व्)श्चिकीर्षितं(न्),
तवेहमानस्य नृणां(म्) विडम्बनम् ।
न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद् ,
द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम् ॥ 29॥

भगवन् ! आप जब मनुष्योंकी-सी लीला करते हैं, तब आप क्या करना चाहते हैं—यह कोई नहीं जानता। आपका कभी कोई न प्रिय है और न अप्रिय। आपके सम्बन्धमें लोगोंकी बुद्धि ही विषम हुआ करती है ॥ 29 ॥

जन्म कर्म च विश्वात्मन्-नजस्याकर्तुरात्मनः ।
तिर्यङ्नृषिषु यादः(स्)सु, तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ 30॥

आप विश्वके आत्मा हैं, विश्वरूप हैं। न आप जन्म लेते हैं और न कर्म ही करते हैं। फिर भी पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जलचर आदिमें आप जन्म लेते हैं और उन योनियोंके अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं। यह आपकी लीला ही तो है ॥ 30 ॥

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्,
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् ।
वक्त्रं(न्) निनीय भयभावनया स्थितस्य,

सा मां(म्) विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥ 31॥

जब बचपनमें आपने दूधकी मटकी फोडक़र यशोदा मैयाको खिझा दिया था और उन्होंने आपको बाँधनेके लिये हाथमें रस्सी ली थी, तब आपकी आँखोंमें आँसू छलक आये थे, काजल कपोलोंपर बह चला था, नेत्र चंचल हो रहे थे और भयकी भावनासे आपने अपने मुखको नीचेकी ओर झुका लिया था ! आपकी उस दशाका—लीला-छबिका ध्यान करके मैं मोहित हो जाती हूँ। भला, जिससे भय भी भय मानता है, उसकी यह दशा ! ॥ 31 ॥

केचिदाहुरजं(ञ्) जातं(म्), पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।

यदोः(फ्) प्रियस्यान्ववाये, मलयस्येव चन्दनम् ॥ 32॥

आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया है, इसका कारण बतलाते हुए कोई-कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जैसे मलयाचलकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय भक्त पुण्यश्लोक राजा यदुकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये ही आपने उनके वंशमें अवतार ग्रहण किया है ॥ 32 ॥

अपरे वसुदेवस्य, देवक्यां(म्) याचितोऽभ्यगात् ।

अजस्त्वमस्य क्षेमाय, वधाय च सुरद्विषाम् ॥ 33॥

दूसरे लोग यों कहते हैं कि वसुदेव और देवकीने पूर्वजन्ममें (सुतपा और पृश्नि रूपमें) आपसे यही वरदान प्राप्त किया था, इसीलिये आप अजन्मा होते हुए भी जगत् के कल्याण और दैत्योंके नाशके लिये उनके पुत्र बने हैं ॥ 33 ॥

भारावतारणायान्ये, भुवो नाव इवोदधौ ।

सीदन्त्या भूरिभारेण, जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥ 34॥

कुछ और लोग यों कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्योंके अत्यन्त भारसे समुद्रमें डूबते हुए जहाजकी तरह डगमगा रही थी—पीडि़त हो रही थी, तब ब्रह्माकी प्रार्थनासे उसका भार उतारनेके लिये ही आप प्रकट हुए ॥ 34 ॥

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानाना- मविद्याकामकर्मभिः ।

श्रवणस्मरणार्हाणि, करिष्यन्निति केचन ॥ 35॥

कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जो लोग इस संसारमें अज्ञान, कामना और कर्मोंके बन्धनमें जकड़े हुए पीडि़त हो रहे हैं, उन लोगोंके लिये श्रवण और स्मरण करनेयोग्य लीला करनेके विचारसे ही आपने अवतार ग्रहण किया है ॥ 35 ॥

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः(स्),

स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं(ञ्) जनाः ।

त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं(म्),

भवप्रवाहोपरमं(म्) पदाम्बुजम् ॥ 36॥

भक्तजन बार-बार आपके चरित्रका श्रवण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं; वे ही अविलम्ब आपके उस चरणकमलका दर्शन कर पाते हैं; जो जन्म-मृत्युके प्रवाहको सदाके लिये रोक देता है ॥ 36 ॥

अप्यद्य नस्त्वं(म्) स्वकृतेहित प्रभो,

जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।

येषां(न्) न चान्यद्भवतः(फ्) पदाम्बुजात्,

परायणं(म्) राजसु योजितां(व्)हसाम् ॥ 37॥

भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो ! क्या अब आप अपने आश्रित और सम्बन्धी हमलोगोंको छोडक़र जाना चाहते हैं ? आप जानते हैं कि आपके चरणकमलोंके अतिरिक्त हमें और किसीका सहारा नहीं है। पृथ्वीके राजाओंके तो हम यों ही विरोधी हो गये हैं ॥ 37 ॥

के वयं(न्) नामरूपाभ्यां(म्),यदुभिः(स्) सह पाण्डवाः ।

भवतोऽदर्शनं(म्) यर्हि, हृषीकाणामिवेशितुः ॥ 38॥

जैसे जीवके बिना इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं, वैसे ही आपके दर्शन बिना यदुवंशियोंके और हमारे पुत्र पाण्डवोंके नाम तथा रूपका अस्तित्व ही क्या रह जाता है ॥ 38 ॥

नेयं(म्) शोभिष्यते तत्र, यथेदानीं(ङ्) गदाधर ।

त्वत्पदैरङ्किता भाति, स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ 39॥

गदाधर ! आपके विलक्षण चरणचिह्नोंसे चिह्नित यह कुरुजांगल-देशकी भूमि आज जैसी शोभायमान हो रही है, वैसी आपके चले जानेके बाद न रहेगी ॥ 39 ॥

इमे जनपदाः(स्) स्वृद्धाः(स्),सुपक्वौषधिवीरुधः ।

वनाद्रिनद्यदन्वन्तो, ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥ 40॥

आपकी दृष्टिके प्रभावसे ही यह देश पकी हुई फसल तथा लता-वृक्षोंसे समृद्ध हो रहा है। ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपकी दृष्टिसे ही वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं ॥ 40 ॥

अथ विश्वेश विश्वात्मन्, विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ।

स्नेहपाशमिमं(ञ्) छिन्धि, दृढं(म्) पाण्डुषु वृष्णिषु ॥ 41॥

लगे।।42।। आप विश्वके स्वामी हैं, विश्वके आत्मा हैं और विश्वरूप हैं। यदुवंशियों और पाण्डवोंमें मेरी बड़ी ममता हो गयी है। आप कृपा करके स्वजनोंके साथ जोड़े हुए इस स्नेहकी दृढ़ फाँसीको काट दीजिये ॥ 41 ॥

त्वयि मेऽनन्यविषया, मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।

रतिमुद्वहतादद्धा, गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ 42॥

श्रीकृष्ण ! जैसे गंगाकी अखण्ड धारा समुद्रमें गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरन्तर प्रेम करती रहे ॥ 42 ॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्-

राजन्यवं(व्)शदहनानपवर्गवीर्य ।

गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार,

योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ 43॥

श्रीकृष्ण ! अर्जुनके प्यारे सखा यदुवंशशिरोमणे ! आप पृथ्वीके भाररूप राजवेशधारी दैत्योंको जलानेके लिये अग्निस्वरूप हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। गोविन्द ! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओंका दुःख मिटानेके लिये ही है। योगेश्वर ! चराचरके गुरु भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ 43 ॥

सूत उवाच

पृथयेत्थं(ङ्) कलपदैः(फ्), परिणूताखिलोदयः ।
मन्दं(ञ्) जहास वैकुण्ठो, मोहयन्निव मायया ॥ 44॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कुन्तीने बड़े मधुर शब्दोंमें भगवान्‌की अधिकांश लीलाओंका वर्णन किया। यह सब सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मायासे उसे मोहित करते हुए-से मन्द-मन्द मुसकराने लगे ॥ 44 ॥

तां(म्) बाढमित्युपामन्त्र्य, प्रविश्य गजसाह्वयम् ।
स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्, प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥ 45॥

उन्होंने कुन्तीसे कह दिया—'अच्छा ठीक है' और रथके स्थानसे वे हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ कुन्ती और सुभद्रा आदि देवियोंसे विदा लेकर जब वे जाने लगे, तब राजा युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे उन्हें रोक लिया ॥ 45 ॥

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः(ख्), कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
प्रबोधितोऽपीतिहासैर्-नाबुध्यत शुचार्पितः ॥ 46॥

राजा युधिष्ठिरको अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेका बड़ा शोक हो रहा था। भगवान्‌की लीलाका मर्म जाननेवाले व्यास आदि महर्षियोंने और स्वयं अद् भुत चरित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने भी अनेकों इतिहास कहकर उन्हें समझानेकी बहुत चेष्टा की; परंतु उन्हें सान्त्वना न मिली, उनका शोक न मिटा ॥ 46 ॥

आह राजा धर्मसुतश्- चिन्तयन् सुहृदां(म्) वधम् ।
प्राकृतेनात्मना विप्राः(स्), स्नेहमोहवशं(ङ्) गतः ॥ 47॥

अहो मे पश्यताज्ञानं(न्),हृदि रूढं(न्) दुरात्मनः ।
पारक्यस्यैव देहस्य, बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥ 48॥

शौनकादि ऋषियो ! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको अपने स्वजनोंके वधसे बड़ी चिन्ता हुई। वे अविवेकयुक्त चित्तसे स्नेह और मोहके वशमें होकर कहने लगे—भला, मुझ दुरात्माके हृदयमें बद्धमूल हुए इस अज्ञानको तो देखो; मैंने सियार-कुत्तोंके आहार इस अनात्मा शरीरके लिये अनेक अक्षौहिणी सेनाका नाश कर डाला ॥ 47-48 ॥

बालद्विजसुहृन्मित्र-पितृभ्रातृगुरुद्रुहः ।
न मे स्यान्निरयान्मोक्षो, ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥ 49॥

मैंने बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र, चाचा, ताऊ, भाई-बन्धु और गुरुजनोंसे द्रोह किया है। करोड़ों बरसोंमें भी नरकसे मेरा छुटकारा नहीं हो सकता ॥ 49 ॥

नैनो राज्ञः(फ्) प्रजाभर्तुर् - धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ।

इति मे न तु बोधाय, कल्पते शासनं(म्)वचः ॥ 50॥

यद्यपि शास्त्रका वचन है कि राजा यदि प्रजाका पालन करनेके लिये धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारे तो उसे पाप नहीं लगता, फिर भी इससे मुझे संतोष नहीं होता ॥ 50 ॥

स्त्रीणां(म्) मद्धतबन्धूनां(ङ्),द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ।
कर्मभिर्गृहमेधीयैर्- नाहं(ङ्) कल्पो व्यपोहितुम् ॥ 51॥

स्त्रियोंके पति और भाई-बन्धुओंको मारनेसे उनका मेरे द्वारा यहाँ जो अपराध हुआ है, उसका मैं गृहस्थोचित यज्ञ-यागादिकोंके द्वारा मार्जन करनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥ 51 ॥

यथा पङ्केन पङ्काम्भः(स्), सुरया वा सुराकृतम् ।
भूतहत्यां(न्) तथैवैकां(न्), न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ 52॥

जैसे कीचड़से गँदला जल स्वच्छ नहीं किया जा सकता, मदिरासे मदिराकी अपवित्रता नहीं मिटायी जा सकती, वैसे ही बहुत-से हिंसाबहुल यज्ञोंके द्वारा एक भी प्राणीकी हत्याका प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता ॥ 52 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(व्)स्यां(म्) सं(व्)हितायां(म्)
प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतिर्युधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥

YouTube Full video link

https://youtu.be/SIE--PDWP_c

SBRK